ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 128-132

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

कोविड–19 : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ0 सरिता सिंह

असि0 प्रोफेसर– समाजशास्त्र विभाग, एस0जी0आर0पी0जी0 कालेज, डोभी– जौनपुर (उ0प्र0) भारत

Received-24.02.2023, Revised-30.02.2023, Accepted-05.03.2023 E-mail: dr.saritasinghsocio@gmail.com

सारांशः ***प्रस्तुत आलेख में विश्व के देशों पर कोविड–19 के प्रभाव को कुछ प्रमुख समाजविचारकों विशेषकर माल्थस, डार्विन, हरबर्ट स्पेन्सर, टायनबी तथा सोरोकिन द्वारा प्रस्तुत सामा०–सांस्कृतिक परिवर्तन की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया गया है। कोविड–19 से विश्व के अनेक विकसित देश कैसे प्रभावित हुए? विकासशील देशों पर इसका प्रभाव कितना रहा? भारतीय समाज में कोविड–19 कितना प्रभावी रहा? जैसे सवालों के जवाब इस आलेख के माध्यम से ढूढ़ने के प्रयास किये गये हैं।***

कुंजीभूत शब्द– समाजविचारकों, सांस्कृतिक परिवर्तन, अवधारणा, विकासशील, संक्रमित, कोरोना वायरस, परिणामस्वरूप।

कोविड–19 विश्व स्वास्थ्य संगठन WHO द्वारा स्वीकृत कोरोना वायरस से संक्रमित एक महामारी है। कोरोना वायरस द्वारा संक्रमित व्यक्ति को हल्के बुखार के साथ सर्दी–जुकाम होता है, इसके बाद यह संक्रमण फेफड़ें को धीरें–धीरें जकड़ लेता है, परिणामस्वरूप रोगी को साँस लेने में दिक्कत होती है, अंततः उसके बचने की संभावना बहुत कम होती है। कोरोना वायरस (COVID-19) की पहचान गले में खरास, खाँसी और बुखार जैसे लक्षणों से होती है। कुछ लोगों के लिए यह बीमारी ज्यादा गम्भीर हो सकती है, उन्हें इससे न्यूमोनिया या सांस लेने में दिक्कत हो सकती है। कुछ मामलों में, यह रोग घातक भी होता है। बुजुर्ग और ऐसे लोग, जिन्हें स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं (जैसे अस्थमा, डायविटीज या दिल की बीमारी) हैं, उनके लिए यह वायरस ज्यादा खतरनाक साबित होता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि कोरोना वायरस के लक्षण सर्दी–जुकाम से इतने मिलते–जुलते हैं कि इसके रोगियों की पहचान करना बहुत मुश्किल होता है। इसी वजह से लोग इसकी चपेट में आसानी से आ जाते हैं।

विश्व के देशों पर कोविड–19 के प्रभाव के संदर्भ में सर्वप्रथम प्रख्यात ब्रिटिश अर्थशास्त्री टी.आर माल्थस द्वारा प्रस्तुत जनसंख्या के सिद्धान्त की चर्चा करना अत्यंत समीचीन होगा। माल्थस द्वारा प्रस्तुत जनसंख्या का सिद्धान्त जनसंख्या की तीव्र वृद्धि तथा इसके फलस्वरूप प्रकृति द्वारा लगाये जाने वाले नैसर्गिक प्रतिबन्धों की विवेचना से संबंधित है।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप के कई देशों में ऐसी प्राकृतिक एवं सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हो गई थीं, जिनके कारणों की खोज करना आवश्यक समझा जाने लगा था। माल्थस वह पहले विचारक थे, जिन्होंने सन् 1798 में अपनी पुस्तक 'Essay on the Principle of Population' में जैविकीय आधार पर जनसंख्या वृद्धि के कारणों, इसके परिणामों एवं नैसर्गिक प्रतिबन्धों का विस्तार से उल्लेख करके एक नई विचारधारा को जन्म दिया। माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त मुख्य रूप से तीन मान्यताओं पर आधारित है–

– मनुष्य में प्रजनन की अधिक क्षमता होने के कारण जनसंख्या में तीव्र दर से वृद्धि होती है।

– जनसंख्या वृद्धि की तुलना में आजीविका के आधार जैसे खाद्यान्न का उत्पादन उस अनुपात में नहीं हो पाता।

– जनसंख्या वृद्धि तथा खाद्यान्न उत्पादन के असंतुलन के कारण नैसर्गिक प्रतिबन्धों के रूप में अकाल, महामारी जैसी दूसरी विपत्तियाँ (आपदाएं) मृत्युदर को बढ़ाकर जनसंख्या के संतुलन को बनाये रखती हैं।

माल्थस द्वारा प्रस्तुत जनसंख्या सिद्धान्त के आलोक में यहां हम दो बिन्दुओं पर चर्चा करना चाहेंगे। पहला, जनसंख्या में वृद्धि। दूसरा, जनसंख्या वृद्धि पर नैसर्गिक अथवा प्रकृति द्वारा लगाया गया प्रतिबन्ध।

माल्थस के अनुसार, जनसंख्या में होने वाली वृद्धि ज्यामितीय अनुपात (Geometrical Ratio) में होती है अर्थात् 1 : 2 : 4 : 8 : 16 इत्यादि। खाद्य–सामग्री में होने वाली वृद्धि ज्यामितीय दर से न होकर गणितीय अनुपात (Arithmetical Ratio) में होती है, अर्थात् 1 : 2 : 3 : 4 : 5 इत्यादि। इसका तात्पर्य है कि जितनी अवधि में जनसंख्या में आठ गुना वृद्धि होती है, उतनी अवधि में खाद्य–सामग्री में होने वाला उत्पादन केवल चार गुना बढ़ता है।

माल्थस ने अपने सिद्धान्त में यह स्पष्ट किया कि यदि बढ़ती हुई जनसंख्या को नियंत्रित न किया जाये, तब एक समय ऐसा आ जाता है कि जनसंख्या के अनुपात में खाद्य–सामग्री बहुत कम रह जाती है। इस दशा में प्रकृति स्वयं ही जनसंख्या पर तरह–तरह के प्रतिबन्ध लगाना आरम्भ कर देती है। अकाल, महामारियां, भूखमरी, प्राकृतिक आपदायें इत्यादि प्रकृति द्वारा लगाये जाने वाले इसी तरह के प्रतिबन्ध हैं, जिन्हें माल्थस ने 'नैसर्गिक प्रतिबन्ध' (Positive Checks) कहा है।

माल्थस द्वारा प्रस्तुत जनसंख्या सम्बन्धी विचार विकसित देशों के संदर्भ में सही प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि इन देशों में न तो जनसंख्या वृद्धि दर का अनुपात ज्यामितीय है और न ही खाद्य सामग्री की वृद्धि दर का अनुपात अंकगणितीय।

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

विकसित देशों में खाद्य–सामग्री का उत्पादन जनसंख्या में वृद्धि दर से कहीं अधिक है। जहाँ तक विकासशील देशों का सवाल है, तो सैद्धान्तिक तौर पर कुछ देशों जैसे– भारत एवं चीन में जनसंख्या वृद्धि की दर खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि की अपेक्षा कम हुई है, किन्तु व्यावहारिक रूप में देखा जाय, तो खाद्य सामग्री की अपेक्षा जनसंख्या की वृद्धि दर अधिक है। उदाहरण के तौर पर समुदाय की सबसे छोटी ईकाई परिवार को लिया जा सकता है। एक परिवार में सदस्यों की संख्या में जिस तरह पीढ़ी–दर–पीढ़ी वृद्धि होती है, उस अनुपात में खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि नहीं हो पाती, क्योंकि खेतिहर भूमि की एक सीमा होती है। यह भूमि परिवार के सदस्यों के बीच कई टुकड़ों में बंट जाती है। इस प्रकार यदि जनसंख्या को नियंत्रित न किया जाय, तो यह वृद्धि जनसंख्या विस्फोट के रूप में प्रकट होती है। इस जनसंख्या विस्फोट को रोकने के लिए प्रकृति अकाल, महामारी, भूखमरी, प्राकृतिक आपदाएं जैसी स्थितियां उत्पन्न करती है और जनसंख्या पर नियंत्रण लगाती है। कोविड–19 एक महामारी के रूप में इसका स्पष्ट उदाहरण है।

माल्थस द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय, तो कोविड–19 का उपयोग प्रकृति ने वास्तव में जनसंख्या पर नियंत्रण के लिए किया है।

सिद्धान्त की इस कड़ी में ब्रिटिश जीवविज्ञानी चार्ल्स डार्विन द्वारा प्रस्तुत प्राकृतिक प्रवरण के नियम का उल्लेख किया जा सकता है। चार्ल्स डार्विन ने सन् 1859 में अपनी पुस्तक 'On the Origin of species' में प्राकृतिक प्रवरण के नियम को जीवों एवं वनस्पतियों पर लागू किया। चार्ल्स डार्विन के प्राकृतिक प्रवरण के नियम पर माल्थस द्वारा प्रस्तुत जनसंख्या के सिद्धान्त का भी प्रभाव रहा है। स्वयं चार्ल्स डार्विन ने भी यह स्वीकार किया है कि माल्थस द्वारा प्रस्तुत जनसंख्या का सिद्धान्त ही वह आधार है, जिसने उन्हें उद्विकास की विवेचना में 'प्राकृतिक प्रवरण' तथा 'योग्यतम प्राणी के अतिजीवन' की अवधारणा को विकसित करने की प्रेरणा दी। डार्विन के अनुसार, प्रवरण की प्रक्रिया दो रूपों में अपना कार्य करती है–एक को हम निरसन (Elimination) कहते हैं और दूसरे को विलयन (Absorption)। जो जीव प्रकृति से अनुकूलन कर लेते हैं, उनका अन्य प्राणियों से विलयन हो जाता है और अनुकूलन न कर सकने की दशा में प्रकृति उसका निरसन कर देती है अर्थात् उसे प्रकृति मार डालने के लिए चुन लेती है।

प्राकृतिक प्रवरण का नियम केवल भौतिक पर्यावरण से अनुकूलन न कर सकने की स्थिति में ही लागू नहीं होता, बल्कि सीमित साधनों के द्वारा अपने अस्तित्व को बनाये रखने की क्षमता न होने पर भी यह नियम क्रियाशील हो जाता है। डार्विन के अनुसार प्रत्येक जीव अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष (Struggle for Eseistence) करता है। वही जीव संघर्ष में सफल/विजयी होता है, जो प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने में सक्षम होता है। शेष जीव नष्ट हो जाते हैं अर्थात् प्रकृति उन्हें मार डालने के लिए चुन लेती है। अर्थात् यहाँ प्राकृतिक प्रवरण (Natural Selection) का नियम लागू होता है। प्राकृतिक प्रवरण का नियम 'अस्तित्व के लिए संघर्ष में योग्यतम प्राणी के अतिजीवन '(Survival of the fittest in the Struggle for existence) की धारणा से सम्बन्धित है। अस्तित्व के संघर्ष की प्रक्रिया तीन रूपों में होती है –

प्राणी का प्राकृतिक परिस्थितियों से संघर्ष– जो प्राणी अपनी प्राकृतिक दशाओं से अनुकूलन नहीं कर पाता, वह इस संघर्ष में हार जाता है। इसलिए प्रकृति उसका निरसन कर देती है। अधिक ठंड, अधिक गर्मी अथवा शारीरिक शक्ति में कमी होने के कारण होने वाली मृत्यु इसी प्रकार के निरसन के उदाहरण हैं।

मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में होने वाला संघर्ष– कुछ संघर्ष मनुष्य और अन्य प्राणियों के बीच होते हैं। जैसे– एक रोगी और रोग के कीटाणुओं के बीच होने वाला संघर्ष। यदि इस संघर्ष में मनुष्य विजयी होता है, तब प्रकृति रोग के कीटाणुओं का निरसन कर देती है और कीटाणुओं की विजय होने पर मनुष्य की मृत्यु हो जाती है।

समान प्रकार के प्राणियों के बीच होने वाला संघर्ष– यह संघर्ष समान प्रकार के जीवित प्राणियों के बीच होता है। उदाहरण के लिए– प्रत्येक व्यक्ति जीवन के विभिन्न साधनों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और इस संघर्ष में वे ही विजयी होते हैं, जो जीवित रहने के लिए सबसे योग्य होते हैं। यह संघर्ष पशुओं और पक्षियों में भी देखा जा सकता है।

इस प्रकार अस्तित्व के लिए संघर्ष की प्रक्रिया में हारने वाले प्राणी का प्राकृतिक प्रवरण के सिद्धान्त के अनुसार निरसन हो जाता है, जबकि इसमें विजयी होने वाले प्राणी को प्रकृति जीवित रहने के लिए छोड़ देती है। अस्तित्व का यह संघर्ष दूसरी प्रक्रिया अर्थात् मानव का (अन्य जीव) कोरोना वायरस के साथ है। इस संघर्ष में जिन व्यक्तियों में रोग से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता अधिक पायी गई, वे कोरोना वायरस से संक्रमित नहीं हुए, यदि संक्रमित हुए भी, तो अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति के बल पर घरेलू उपचार से ही स्वस्थ हो गये। इसके विपरीत कुछ उदाहरण ऐसे भी देखने को मिले, जिसमें परीक्षण के दौरान कोरोना पॉजिटिव होने पर उनकी हार्टअटैक से मृत्यु हो गई, या तो हास्पिटल में चिकित्सक की निगरानी में अपना इलाज करवाकर स्वस्थ हुए। विडम्बना तो यह है कि कुछ व्यक्ति कोरोना के चिकित्सकीय उपचार के बाद स्वस्थ तो हो गये, लेकिन परिणाम के रूप में गंभीर बीमारी का शिकार हो गये।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

व्यावहारिक रूप से डार्विन द्वारा प्रस्तुत 'प्राकृतिक प्रवरण' को यूरोपीय देशों के संदर्भ में सकारात्मक देखा जा सकता है। वहाँ के नागरिकों में प्रतिरोधक क्षमता का अभाव होने के कारण कोरोना संक्रमण से मौतें अपेक्षाकृत अधिक हुईं। कोविड संक्रमण के दौरान जिन व्यक्तियों ने अपना संयम नहीं खोया, दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ कोरोना संक्रमण का सामना किया, वे अधिक प्रभावित नहीं हुए। जिन व्यक्तियों ने धैर्य से काम नहीं लिया, संक्रमण से भयभीत हो गये, उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा, परिणामस्वरूप उनकी मौत तक हो गई।

जीव विज्ञानी डार्विन द्वारा प्रस्तुत प्राकृतिक प्रवरण के नियम को ब्रिटिश समाजशास्त्री हरबर्ट स्पेंसर ने मानव समाज पर लागू किया और कहा कि अस्तित्व के लिए संघर्ष मनुष्य तथा अन्य प्राणी के बीच तथा स्वयं मनुष्य और मनुष्य के बीच निरन्तर होता रहता है और इस संघर्ष में केवल सबसे उपयुक्त अथवा योग्यतम प्राणी ही जीवित रहते हैं। हरबर्ट स्पेंसर के अनुसार उत्तरजीविता के सम्बन्ध में समाज में वही व्यक्ति सफल होता है, जो समाज में परिस्थितियों के साथ अनुकूलन कर लेता है। इसके विपरीत की स्थिति में वह पीछे रह जाता है।

आज कोरोना संक्रमण से पूरा विश्व प्रभावित है। कोरोना वायरस का स्वरूप चाहे जैविक हो अथवा प्राकृतिक, इसने समूचे मानव जाति को संकट में डाल दिया है। विश्व के लगभग सभी देश कोविड–19 (कोरोना वायरस) से प्रभावित हुए है। अमेरिका, ब्रिटेन, इटली, फ्रांस, स्पेन जैसे समृद्ध एवं विकसित देश इस वायरस के समक्ष अपने घुटने टेक दिये। इस वायरस का संक्रमण चीन के बुहान शहर से आरम्भ होकर विश्व के कोने–कोने तक पहुँच गया।

इटली, जैसे देश जिसकी चिकित्सा प्रणाली विश्व में दूसरे स्थान पर है, इसे भी कोरोना ने घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया। इस वायरस के कहर से अनगिनत व्यक्तियों की मौत हो गई। यहां तक कि इलाज करने के दौरान कई चिकित्सक भी अपनी जान गंवा दिये। इसके पीछे कहीं न कहीं उनकी तथाकथित आधुनिक जीवन–शैली उत्तरदायी रही है। इटली में अधिकांश लोग धूम्रपान करते हैं, डिब्बा बंद भोज्य पदार्थों को प्राथमिकता देते हैं, फलस्वरूप गलत खान–पान एवं धूम्रपान के कारण एक सुनिश्चित आयु के पश्चात् सांस के रोगी हो जाते हैं। दूसरा कारण वृद्धों की संख्या का अधिक होना है। द न्यूयार्क टाइम्स के अनुसार इटली में 65 या इससे अधिक आयु के लोगों की संख्या लगभग एक चौथाई है। बुजुर्गों में स्वास्थ्य से संबंधित समस्या एवं प्रतिरोधक क्षमता कम होने के कारण अपेक्षाकृत मौतों की संख्या अधिक रही। किसी–किसी देश में तो कोरोना वायरस ने भाई–बन्धु, सगे–सम्बन्धियों को अलग–थलग कर दिया। स्पेन जैसे देशों में कोरोना से संक्रमित व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर परिवार के सदस्यों द्वारा छोड़ दिया गया। इस तरह की स्थिति कहीं न कहीं पारिवारिक स्वरूप की कमजोर इकाई को दर्शाता है।

प्राकृतिक प्रवरण के नियम को भारतीय संदर्भ में देखा जाय, तो कोरोना से मृत्यु का प्रतिशत अन्य देशों विशेषकर विकसित देशों की अपेक्षा कम रहा है। इसका मुख्य कारण भारतीयों में प्रतिरोधक क्षमता का अधिक पाया जाना है। जहाँ रूस जैसे देशों में सर्दी–जुकाम को एक गंभीर संक्रमित बीमारी के रूप में देखा जाता है, वहीं हमारे देश में इसे कोई भी व्यक्ति गंभीरता से नहीं लेता है। इतना अवश्य है कि कोरोना (Covid-19) के फैलाव के पश्चात् लोग होने वाले सर्दी–जुकाम अथवा संक्रमण के प्रति जागरूक हो गये हैं।

भारत कृषि प्रधान देश है और अधिकांश व्यक्ति गांवों में निवास करते हैं। गांव का वातावरण शहर की अपेक्षा शुद्ध होता है, लोग प्रकृति की गोंद में अपना अधिक समय व्यतीत करते हैं। गांव के लोगों की जीवन–शैली काफी रफ–टफ होती है, जिसके कारण गांवों में कोरोना संक्रमण नगरों की अपेक्षा कम रहा है। पहले फेज में गांवों में कोरोना संक्रमण काफी न्यून था, परन्तु लोगों के शहरों से गांव में आने के पश्चात् यह संक्रमण काफी जान लेवा साबित हुआ। गांव के लोगों में रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता शहर के लोगों की अपेक्षा अधिक पायी जाती है। इसके पीछे मुख्य कारण शहरी लोगों की तथाकथित आधुनिक जीवन शैली अर्थात् डिब्बा बंद भोज्य पदार्थों का अधिक सेवन, बाहर का भोजन, देर रात तक खाना, भोजन करना, टी.वी. देखना, सोना इत्यादि रहा है।

हमारे प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों में 'शतम् जीवेत्' की धारणा सदैव बलवती रही है। प्रायः वर–वधू या किसी भी व्यक्ति को आशीर्वाद के रूप में कहा जाता है कि 'तुम सौ साल तक जिओ।' इसका तात्पर्य है कि पहले व्यक्ति की जीवन अवधि 100 साल तक होना आम बात थी। इसके पीछे व्यक्ति का प्रकृति प्रेम भी जाहिर होता है।

सूर्योदय से पहले उठना, स्नान के बाद सूर्य नमस्कार, रात्रि में जल्दी सो जाना जैसी दिनचर्या के कारण व्यक्ति एक स्वस्थ जीवन जीता था। स्वास्थ्य का तात्पर्य केवल शारीरिक नहीं, बल्कि मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य से भी है। अमेरिका के प्रख्यात लेखक वेंजामिन फ्रैंकलिन ने लिखा है – **"Early to bed early to rise makes a man healthy, wealthy and wise."**

हमारे देश में मानव एवं प्रकृति के प्रेम को शाश्वत माना गया है।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

शाश्वतं प्रकृति–मानव–संगतम्, संगतं खलु शाश्वतम्।
तत्त्व सर्वं धारकम्, सत्व–पालन–कारकम्।
वारि–वायु–व्योम–वहिन–ज्या–गतम्।
शाश्वतं प्रकृति–मानव–संगतम्।

अगले सिद्धांत के रूप में प्रख्यात अंग्रेज इतिहासकार टायनबी द्वारा प्रस्तुत सामाजिक परिवर्तन के 'चुनौती एवं प्रत्युत्तर' के सिद्धांत को प्रस्तुत किया जा सकता है। टायनबी ने अपनी पुस्तक A Study of History में समाज में आने वाली विपत्तियों जैसे– युद्ध, अकाल, महामारी, प्राकृतिक आपदा को विनाशकारी चुनौतियां कहा है और समाज द्वारा दिये जाने वाले प्रत्युत्तरों को समाज में पुनः दृढ़ता लाने में सहायक माना है।

विकास एवं पतन की प्रक्रिया में एक समय के बाद समाज के समक्ष चुनौतियॉं उत्पन्न होती हैं जिसके प्रत्युत्तर में समाज को इन चुनौतियों का सामना करने के लिए विषेश प्रयत्न करने पड़ते हैं। इस दौरान जो समाज चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होता है, उस समाज का विकास अथवा पुनर्जन्म होता है, विपरीत की स्थिति में जब समाज विनाशकारी चुनौतियों का प्रत्युत्तर देने में असफल होता है तो ऐसे समाज का विनाश निश्चित होता है। टॉयनबी का मानना है कि हमारे शरीर रचना का आरम्भ में बहुत तेजी से विकास होता है तथा इसकी शक्ति निरंतर बढ़ती जाती है। उसी प्रकार सामाजिक विकास के आरम्भिक स्तर पर सामाजिक परिवर्तन भी व्यापक स्तर पर देखने को मिलते हैं। इसके पश्चात् जब समाज परिपक्व हो जाता है तो उसमें शरीर रचना के समान दृढ़ता अथवा लोच (अभियोजनशीलता) की कमी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और धीरे–धीरे समाज की अभियोजनशीलता कम होने लगती है। यह स्थिति तब तक बनी रहती है जब तक समाज के सामने युद्ध, महामारी, भौतिक संसाधनों की कमी अथवा कोई विपत्ति न आ जाये। टायनबी के अनुसार यही विपत्ति वह चुनौती है, जिसके प्रत्युत्तर में समाज को अनेक प्रकार के प्रयत्न करना आवश्यक हो जाता है। यदि समाज इन चुनौतियों का सामना करने में सफल होता है, तो उसमें पुनः अभियोजनशीलता और विकास के गुण पैदा हो जाते हैं; परिणामस्वरूप समाज का पुनर्जन्म होता है। यदि समाज किसी तरह का प्रत्युत्तर नहीं दे पाता है तो उसका विनाश हो जाता है। यह दोनों ही दशाएं समाज में परिवर्तन को स्पष्ट करती हैं।

प्रस्तुत सिद्धांत के आलोक में देखा जाय, तो कोविड–19 एक महामारी के रूप में हमारे समाज में एक चुनौती है, जिसने पूरी मानव जाति को संकट में डाल दिया है। अमेरिका सहित यूरोप के कई देश– इटली, स्पेन, फ्रांस, ब्रिटेन इस महामारी का सामना करने में असफल रहे, जिससे हजारों–लाखों व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। जहां तक भारत का सवाल है, यहां इस महामारी का सामना लोगों द्वारा डटकर किया गया। एलोपैथ के साथ योग एवं आयुर्वेद को अपनाकर लोगों द्वारा इस महामारी का प्रत्युत्तर दिया गया। साथ ही यथासंभव अस्पतालों में बेड एवं ऑक्सीजन की संख्या बढ़ाकर कोरोना संक्रमित रोगियों को चिकित्सकीय सुविधाएं प्रदान की गयीं।एक व्यक्ति सफाई, संयम एवं सामाजिक दूरी को अपनाकर स्वयं का, अपने परिवार का एवं एक समुदाय का बचाव कर सकता है। आज यह हमारे समाज के लिए प्रकृति द्वारा प्रदत्त एक चुनौती है, जिसका प्रत्युत्तर मानव समाज को देना है। यह चुनौती हमारा ध्यान स्वानुशासन एवं आत्मसंयम की तरफ आकर्षित करती है। यदि व्यक्ति इसमें असफल होता है, तो प्रकृति अपना काम अवश्य करेगी। जिसे कोविड–19 के संक्रमण से हुए मौत के तांडव के रूप में देखा जा सकता है।

किसी भी तथ्य के दो पहलू उभरकर हमारे सामने आते हैं– सकारात्मक एवं नकारात्मक। यद्यपि कोरोना संक्रमण के नकारात्मक पक्ष अधिक रहे हैं, कई परिवार उजड़ गये, बच्चे अनाथ हो गये, कई व्यक्ति हमेशा के लिए अन्य रोगों से ग्रस्त हो गये।

भारतीय समाज अब भौतिकता के साथ–साथ आध्यात्मिकता की ओर धीरे–धीरे अग्रसर हो रहा है। यदि किसी भी समाज में भौतिक एवं आध्यात्मिक संस्कृति में संतुलन की स्थिति हो जाय, तो वह समाज आदर्श होगा। उस समाज में रहने वाले लोगों के विचार, मनोवृत्ति, जीवन शैली में एक विशेष प्रकार का परिवर्तन उत्पन्न होगा। इस सम्बन्ध में सोरोकिन के 'सामाजिक, सांस्कृतिक गतिशीलता' के सिद्धान्त का उल्लेख करना समीचीन होगा।

परिवर्तन की प्रक्रिया अवष्यम्भावी है। भोगवादी संस्कृति के प्रति अधिक झुकाव होने के पष्चात समय के अन्तराल पर व्यक्ति का रुझान विचारात्मक अथवा आध्यात्मिक संस्कृति की ओर बढ़ने लगता है। सोरोकिन ने सांस्कृतिक गतिशीलता के माध्यम से समाज में परिवर्तन को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। सोरोकिन ने संस्कृति के तीन स्वरूपों का उल्लेख किया है–

– चेतनात्मक या भोगवादी संस्कृति (Sensate Culture) का सम्बन्ध उन सभी वस्तुओं से है, जो हमारी इच्छाओं को संतुष्ट करती है। इसमें सभी भौतिक वस्तुओं, आविष्कारों तथा विलासी इच्छाओं को पूरा करने वाले साधनों का समावेश होता है। चेतनात्मक संस्कृति पूर्ण रूप से भौतिकवादी है। इसमें अलौकिक विश्वासों एवं नैतिक मूल्यों का कोई महत्व नहीं है।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

– विचारात्मक संस्कृति (Ideational Culture) प्रत्येक स्थिति में ईश्वरीय न्याय, नैतिक मूल्यों, समाजोपरि सत्ता, आत्मा सम्बन्धी विश्वासों और कर्त्तव्यों को महत्व देती है। अध्यात्मवाद इस संस्कृति का सार तत्व है।

– आदर्शवादी संस्कृति (Ideal Culture) इन दोनों संस्कृतियों के बीच की स्थिति है, जो व्यक्तिगत लाभ के साथ ही मानवीय मूल्यों को भी महत्व देती है।

सोरोकिन ने यह माना है कि सभी परिवर्तन आदर्शवादी संस्कृति में ही होते हैं। यदि सांस्कृतिक परिवर्तन विचारात्मक संस्कृति की ओर होते हैं तो कुछ समय तक इस दिशा में बढ़ने के बाद वे पुनः भोगवादी संस्कृति की ओर लौटने लगते हैं तथा जब वे भोगवादी संस्कृति की सीमा तक पहुँच जाते हैं, तो उनमें पुनः विचारात्मक संस्कृति की ओर बढ़ने की प्रक्रिया दिखाई देने लगती है।

अपने सिद्धान्त के आधार पर सोरोकिन ने यह निष्कर्ष दिया कि बीसवीं शताब्दी की पश्चिमी सभ्यता, भोगवादी संस्कृति की चरम सीमा तक पहुँच चुकी है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति भौतिक सुखों की खोज में लगा हुआ है, इसलिए यह संभावना की जा सकती है कि बहुत शीघ्र ही उसकी दिशा विचारात्मक संस्कृति की ओर पुनः मुड़ जायेगी।

कोविड–19 के दौरान लोगों की भौतिकवादी मानसिकता में बदलाव आया है, लोगों का झुकाव आध्यात्मिकता की तरफ बढ़ा है, उनकी दिनचर्या बदली है। बहुत लोगों ने योग करना आरम्भ कर दिया है, अपने खान–पान में पौष्टिक आहार को सम्मिलित कर, बाजार के डिब्बा बंद खाद्य–पदार्थों का सेवन करना कम कर दिया है। कोरोना काल में कुछ ऐसे भी उदाहरण देखने को मिले, जिसमें कई धनिकों ने अपना धन गरीबों में वितरित कर दिया।

इतिहास की कई बड़ी आपदाओं के बाद सामाजिक, आर्थिक समझ और जीवनशैली में बदलाव देखे गये हैं। कोरोना संकट के दौर में भी समूचे विश्व में सामाजिक जीवन काफी हद तक प्रभावित हुआ है। हमारे खान–पान और तौर–तरीकों से लेकर हमारी कार्यशैली में भी बदलाव आया है।

हमारी भारतीय संस्कृति में हाथ जोड़कर नमस्ते से अभिवादन करने की परम्परा रही है। कोरोना संक्रमण से बचाव हेतु पूरी दुनिया ने हाथ मिलाने की जगह नमस्ते करने की भारतीय संस्कृति अपना ली है। तथाकथित आधुनिक जीवनशैली ने लोगों के साफ–सफाई के मायने बदल दिया था। रसोईघर में चप्पल पहनकर भोजन तैयार करना, बाहर से जूता–चप्पल पहनकर घर के अंदर प्रवेश करना, बिना हाथ धोये चम्मच से खाना, विस्तर पर टी०वी० देखते हुए खाना आदि आदतें पश्चिमी संस्कृति की देन हैं, लेकिन कोरोना संक्रमण के दौरान लोगों ने भारतीय जीवन–शैली को अपनाकर तथाकथित आधुनिक आदतों से किनारा करना आरम्भ कर दिया है। स्वच्छता और सफाई को अपने जीवन शैली में अपना लिया है।

इस प्रकार उपरोक्त सिद्धांतों के आलोक में व्यक्ति और समाज पर कोविड–19 के प्रभाव को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है, यद्यपि कोई भी अवधारणा अथवा विचार अपने आप में पूर्ण नहीं होता है। उम्मीद है, प्रस्तुत विषय पर भी स्वस्थ आलोचना की आवश्यकता है। प्रस्तुत आलेख में विद्वानों द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तों एवं अवधारणा का कोरोना संक्रमण के प्रभाव के साथ सह–सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Malthus,TR (1798) : Essay on the Principle of Population, quoted by G.K. Agrawal in Samajshastra, SBPD Publishing House.
2. Darwin, Charles (1859) : On the Origin of Species, quoted by RN Mukerjee in social Thought, Vivek Prakashan.
3. Mitchel, GD (1967) : A Dictionary of Sociology, edt. Aldin Publishing Company, London.
4. Spencer, Herbert (1898) : Principles of Sociology, quoted by RK Mukerjee in Social Thought, Vivek Prakashan.
5. Toynbee, AJ (1934) : A Study of History, quoted by GK Agrawal in Samajshastra, SBPD Publish ing House.
6. Sorokin, PA (1937) : Social and Cultural Dynamics, quoted by RN Mukerjee in Samajik Niyantran evam Samajik Parivartan.

*****